प्रकाशन सं० २६७

# विद्यालयीय स्तर पर प्रकाशित सामाजिक विज्ञान भाग-१ पुस्तक की वर्तमान सम्बोधों के परिप्रेक्ष्य में समीक्षा तथा संशोधन सम्बन्धी सुझाव

मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग
(राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान)
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, उ० प्र०
लखनऊ
१९८८

NIEPA DC
D04863

-542
370-15
UTT-V

Sub. National Systems Unit,
National Institute of Educational
Planning and Aministration
17-B,Sri Aurobindo Marg,NewDelhi-110016
DOC. No. 4863
Date 12/9/89

## दो शब्द

दस वर्षीय सामान्य शिक्षा नवोदित परिवेश की एक अपरिहार्य परिणति है। इस नवीन शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत हाई स्कूल स्तर पर सामाजिक विज्ञान एक अनिवार्य विषय के रूप में पाठ्यक्रम में निर्धारित किया गया है। वस्तुतः समाज में व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों एवं आकांक्षाओं के बहुआयामी पक्षों की प्रस्तुति ही सामाजिक विज्ञान का अनुशासन है जिसकी परिधि में इतिहास, नागरिक शास्त्र, भूगोल और अर्थशास्त्र स्वाभाविक रूप से आते हैं। इन विषयों को पृथक पृथक पढ़ाने से पाठ्यक्रम अनावश्यक सीमा तक विस्तृत हो जाता है। इसके समेकित स्वरूप को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से ही सामाजिक विज्ञान की राष्ट्रीयकृत पुस्तक का प्रणयन किया गया है।

उपरांकित परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत पुस्तक की समीक्षा का उद्देश्य इसे और उपयोगी बनाने हेतु, इसके पुर्नलेखन में संशोधन और परिवर्धन का मार्ग प्रशस्त करना है। मुझे हर्ष है कि राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग (राजकीय केन्द्रिय अध्यापन विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद) द्वारा इस परियोजना को एक अग्रगामी अध्ययन के रूप में सत्र 1986-87 एवं 1987-88 हेतु चयन किया गया है। एतदर्थ संस्थान के प्राचार्य श्री प्रयाग दत्त दीक्षित और उनके सहयोगियों विशेष रूप से प्रोफेसर गिरीशचन्द्र श्रीवास्तव तथा प्रवक्ता श्री राधेश्याम शुक्ल जो इस परियोजना में कार्यरत है, को धन्यवाद देता हूँ।

डा० (लक्ष्मी प्रसाद पाण्डेय)
निदेशक,
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद, उत्तर प्रदेश
लखनऊ।

# आमुख

सामाजिक विज्ञान अध्ययन का अपेक्षाकृत एक अभिनव क्षेत्र है। अतः इसकी संकल्पना का स्वरूप भी समाज के स्वरूप विस्तार की भाँति सतत विकासमान है। दस वर्षीय सामान्य शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत हमारा लक्ष्य इस अभिनव क्षेत्र के माध्यम से हाई स्कूल स्तर पर अध्ययनरत छात्रों में व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों की समझ का विकास और तदनुरूप व्यवहार का परिष्करण और उदात्तीकरण है।

सामाजिक विज्ञान की राष्ट्रीयकृत पुस्तक के प्रणयन के बाद सतत शिक्षा एवं पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत समय समय पर संस्थान में प्रतिभागी के रूप में आने वाले उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के सामाजिक विज्ञान के अध्यापकों की प्रतिक्रियाओं से अवगत होने पर मैंने अनुभव किया कि उक्त पुस्तक की विषय वस्तु प्रस्तुति और अभिव्यक्ति आदि पक्षों पर समीक्षा की आवश्यक अपरिहार्य है।

उक्त परिप्रेक्ष्य में राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के तत्त्वावधान में यह महत्त्वपूर्ण कार्य संस्थान ने अग्रगामी अध्ययन के रूप में सत्र 1986-87 और 1987-88 हेतु चयन किया है जिसे संस्थान के प्रोफेसर गिरीशचन्द्र श्रीवास्तव एवं प्रवक्ता श्री राधेश्याम शुक्ल सम्पन्न कर रहे हैं।


§ प्रयाग दत्त दीक्षित §
प्राचार्य
राजकीय मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विभाग
राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान
इलाहाबाद।

# शोध परियोजना

## विद्यालयीय स्तर पर प्रकाशित सामाजिक विज्ञान भाग-I पुस्तक की वर्तमान सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में समीक्षा तथा संशोधन संबंधी सुझाव।

### पृष्ठभूमि:

**शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर पर एक रूपता लाने के उद्देश्य से उत्तर प्रदेश में जुलाई** 1982 से दस वर्षीय सामान्य शिक्षा प्रणाली लागू की गई है। इसके अन्तर्गत सामाजिक विज्ञान एक नये समन्वित विषय अथवा क्षेत्र के रूप में उभर कर उद्भूत हुआ है। सामाजिक विज्ञान की संकल्पना नवीन है तथा समाज के स्वरूप तथा विस्तार के समान अत्यन्त व्यापक तथा बहु आयामी है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली द्वारा 1986 में "नेशनल करीक्यूलम फार प्राइमरी एण्ड सेकेण्डरी एजूकेशन-एक फ्रेम वर्क" शीर्षक से 36 पृष्ठों की एक पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसमें शिक्षा की चुनौती नीति संबंधी परिप्रेक्ष्य में एक राष्ट्रीय बीज पाठ्यक्रम विकसित करने की अनुशंसा की गई है। इसके अन्तर्गत अवर प्राथमिक स्तर (कक्षा 1-5 तक) पर परिवेशीय अध्ययन, प्रवर प्राथमिक स्तर (कक्षा 6-8 तक) सामाजिक विज्ञान तथा माध्यमिक स्तर कक्षा 9-10 तक) सामाजिक विज्ञान और भारत वर्तमान के अध्ययन की अनिवार्यता का स्पष्ट उल्लेख है। कुल मिलाकर व्यक्ति, समाज और पर्यावरण के पारस्परिक सह-संबंधों और अन्तः सम्बन्धों को संयोजित रूप में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से एक अनिवार्य विषय के रूप में सामाजिक विज्ञान के अध्ययन का प्रावधान है।

विद्यालय की स्थापना के मूल में समाज के लिये समर्पित, कर्मठ, जागरूक एवं विवेकशील नागरिकों को तैयार करने का मधुर सपना समाहित होता है। इस लक्ष्य की सम्प्राप्ति में पाठ्यक्रम के अन्य विषयों की तुलना में सामाजिक विज्ञान का सर्वाधिक महत्व स्वयं सिद्ध है। सामाजीकरण एक दीर्घ और संश्लिष्ट प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्धों का सामंजस्य, व्यक्ति और समष्टि के पारस्पत्कि सम्बन्धों का संतुलन और व्यक्ति के प्रति समादर के विविध आयाम प्रस्फुटित होते हैं।

व्यक्ति समाज की इकाई है और समाज उसका बहु आयामी समावेशकारी स्वरूप। व्यक्ति को सामाजिक होने के लिये अपना कुछ त्यागना पड़ता है और समाज से कुछ ग्रहण करना होता है। यह प्रक्रिया ही सामाजीकरण है। सामाजीकरण की यह प्रक्रिया न तो शून्य में घटित होती है और न एकाएक। इसके लिये सहयोगियों के प्रति सद्भावना का विकास तथा एक साथ कार्य करने की नैसर्गिक

आकांक्षा में वृद्धि अपेक्षित है। यह समाज संपृक्त होने पर शनैः शनैः संस्कारित और कालान्तर में परिष्कृत होती है। जन्म से ही कोई बालक सामाजिक अथवा असामाजिक नहीं होता। अतः छात्र के प्रारम्भिक जीवन से ही सामाजिक चेतना के विकास हेतु अभीष्ट वातावरण उपलब्ध कराने की व्यवस्था अपरिहार्य है। इस दिशा में सामाजिक विज्ञान का अध्ययन एक सशक्त और प्रेरक दिशा-बोध है।

ज्ञान वस्तुतः एक अभिन्न और अखंड समष्टि है। परन्तु विभिन्न विषयों के रूप में ज्ञान की पृथक-पृथक दीर्घाएँ बनाकर, अधिगम शिक्षण की परम्परा अत्यन्त प्रबल है। इससे न केवल विषयवस्तु का आवश्यक विस्तार होता है अपितु बोझिलता और नीरसता भी उत्पन्न होती है। सामाजिक विज्ञान की संकल्पना इस अनावश्यक विस्तार और अस्पष्ट लक्ष्यों से मुक्त होकर प्रतिवाद्य अन्तर्वस्तु को सरल और सुबोध बनाकर समन्वित रूप से इस प्रकार प्रस्तुत करती है कि इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र और समाज शास्त्र परस्पर कुल मिलकर एक संकुल का स्वरूप धारण कर लेते हैं। इस प्रक्रिया से सामाजिक विज्ञान एक विषय न होकर सामाजिक जीवन को प्रभावित करने वाला एक समन्वित क्षेत्र हो जाता है जो एक ओर विषयगत अनुशासन से युक्त है वहीं दूसरी ओर सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों के सृजन की संभावनाओं से परिपुष्ट है।

अतः मानव सभ्यता के क्रमिक विकास के आख्यान को रूमानी शैली में प्रस्तुत कर छात्रों में सामाजिक अनुभूति अनुप्राणित करने, उनमें स्वस्थ नागरिकता, सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के समाधान की क्षमता उत्पन्न करने, लोकतांत्रिक मूल्यों के परीक्षण हेतु सहयोग सहकार, भ्रातृत्व भावना विकसित करने, समाजवाद; धर्म निरपेक्षवाद, भावनात्मक एकता, दायित्व बोध अनुशासन, राष्ट्रीय एकता एवं सद्भावना आदि मूल्यों के प्रति नैष्ठिक उद्बोधन के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक विज्ञान भाग-। की समीक्षा तथा संशोधन सम्बन्धी सुझाव प्रस्तुत करना ही इस परियोजना का अभिप्रेत है।

**उद्देश्यः**

सामाजिक विज्ञान भाग-। के प्राक्कथन में उद्देश्य का निरूपण करते हुए लिखा गया है कि इसका उद्देश्य छात्रों को मानव सभ्यता के क्रमिक विकास से परिचित कराना, भौगोलिक परिस्थितियों का मानव जीवन पर प्रभाव स्पष्ट करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में वर्तमान भारतीय समाज की जानकारी प्रदान करना है। साथ ही इसका उद्देश्य पाठ्यवस्तु के माध्यम से छात्रों में समाजवाद, धर्म निरपेक्षता, भावात्मक सामंजस्य, दायित्व बोध, अनुशासन, राष्ट्रीय एकता, अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना जैसे नवीन मूल्यों के प्रति जागरूकता एवं निष्ठा उत्पन्न करना है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली द्वारा माड्यूल-।8 माध्यमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत इसके बहुआयामी उद्देश्यों को विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया गया है। कुल मिलाकर इसके उद्देश्यों को संक्षेप में इस प्रकार निरूपित किया जा सकता है:-

(।) मानव सभ्यता के विकास के विभिन्न चरणों एवं मानव जाति के इतिहास की उन प्रवृत्तियों से छात्रों को अवगत कराना जिन्होंने आधुनिक तथा समसामयिक दुनियाँ को वर्तमान स्वरूप प्रदान किया है।

(२) विभिन्न संस्कृतियों के पारस्परिक आदान-प्रदान के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को रेखांकित करना।

(३) विश्व इतिहास के व्यापक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक भारत के ऐतिहासिक विकास के बारे में बच्चे को ज्ञान देना और उनकी समझ को गहरा बनाना।

(४) विश्व की समसामयिक समस्याओं, विश्व शांति और अन्तर्राष्ट्रीय सहकार, उप निवेश उन्मूलन और मानव अधिकारों की रक्षा जैसी समस्याओं के क्षेत्र में भारत की सक्रिय भूमिका को उजागर करना।

उपर्युक्त उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में इस परियोजना के अन्तर्गत यह रेखांकित करने का प्रयास किया जायगा कि प्रस्तुत पुस्तक इन उद्देश्यों की पूर्ति में किस सीमा तक सहायक है। विषय वस्तु तथा प्रस्तुतीकरण के स्वरूप की उपयुक्तता का भी मूल्यांकन किया जायगा और पुस्तक में सुधार हेतु सुझाव भी प्रस्तुत किये जायेंगे।

**कार्य प्रणाली एवं उपकरण:**

विषय विशेषज्ञों एवम् केन्द्रीय अध्यापन संस्थान, इलाहाबाद में सतत् शिक्षा प्रशिक्षण एवं पुनर्बोधात्मककार्य के अन्तर्गत समय-समय पर आने वाले इस विषय के अध्यापकों की प्रतिक्रिया ज्ञात करने हेतु एक पृच्छा पत्र निर्मित किया गया। इस प्रपत्र के माध्यम से राज्य सरकार द्वारा प्रकाशित सामाजिक विज्ञान भाग-। की समीक्षा हेतु उनकी प्रतिक्रियाएँ आमंत्रित की गई जिससे अन्तर्वस्तु एवं प्रस्तुतीकरण के विविध पक्षों पर पुनर्विचार, संशोधन एवं परिवर्द्धन का मार्ग प्रशस्त हुआ।

राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद

**पृच्छा पत्र**

(हाईस्कूल कक्षाओं में सामान्य विज्ञान पढ़ाने वाले अध्यापकों के लिए)

महोदय,

इस प्रपत्र के माध्यम से राज्य सरकार द्वारा प्रकाशित सामाजिक विज्ञान भाग-। की समीक्षा हेतु आपकी प्रतिक्रियाएँ आमंत्रित की जा रही है। कृपया इस प्रपत्र पर सन्दर्भित बिन्दुओं के समक्ष अपने अमूल्य विचार अंकित करने का कष्ट करें जिससे पुस्तक के विविध पक्षों पर पुनर्विचार, संशोधन एवं परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त हो।

प्रयागदत्त दीक्षित,
प्राचार्य,
राजकीय सी०पी०आई०,
इलाहाबाद।

1. सामाजिक विज्ञान भाग-। में विषयवस्तु को अनुशासित कर विस्तार और पुनरावृत्ति के दोष दूर करने में कहाँ तक सफलता मिली है।
2. छात्रों में व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों की समझ विकसित करने में पुस्तक कहाँ तक सहायक है?
3. मानव सभ्यता के विकास ने आधुनिक दुनियाँ को जैसा वर्तमान स्वरूप आज प्रदान किया है, पुस्तक में यह पक्ष छात्रों के लिये कहाँ तक बोधगम्य है?
4. विश्व की विभिन्न संस्कृतियों के पारस्परिक आदान-प्रदान को पुस्तक में कहाँ तक उजागर किया गया है?
5. विश्व की समसामयिक समस्याओं, विश्व शांति अन्तर्राष्ट्रीय सहकार, उपनिवेश उन्मूलन और मानव अधिकारों की रक्षा जैसी समस्याओं के प्रति भारत की भूमिका कहाँ तक स्पष्ट है?
6. छात्रों में समाजवाद, धर्म निरपेक्षवाद, दायित्व बोध, अनुशासन, भावात्मक एकता, राष्ट्रीय एकता, अन्तर्राष्ट्रीय बोध जैसे आधुनिक मूल्यों के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने में पुस्तक कहाँ तक सहायक है?
7. समय-समय पर घटित सामाजिक परिवर्तनों, धार्मिक आन्दोलनों और राजनीतिक क्रान्तियों की प्रकृति, स्वरूप, विस्तार और प्रभाव का समावेश पुस्तक में किस सीमा तक है?

8. क्या पुस्तक में प्रस्तुतीकरण की आन्तरिक सम्बद्धता अनुक्रम, तथ्यों की प्रासंगिकता, उपयुक्तता, बौद्धिक जिज्ञासा, मनोविनोदात्मक उत्सुकता आदि गुणों का समावेश है? प्रत्येक बिन्दु पर अपने विचार दें।
9. पुस्तक में उन स्थालों की ओर संकेत कीजिए जहाँ बोझिलता एवं दुरूहता है।
10. विषय वस्तु के प्रस्तुतीकरण में शिक्षक विज्ञान के आधुनिक उपागमों (कार्य कारण, दृश्य-श्रव्य उपादान प्रयोग एवं शैक्षक तकनीक) के प्रति अपनी प्रतिक्रिया दें।
11. क्या पुस्तक में संवेदनात्मक सामग्री-व्यक्तिगत, विद्यालय कक्षा एवं कक्ष्येतर के लिये उपयुक्त एवं पर्याप्त है?
12. पारिभाषिक शब्दों की उपयुक्तता के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करें।
13. मूल्यांकन हेतु दिये गये प्रश्न अभ्यासों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट करें (पर्याप्त/अपर्याप्त, अभिप्रेरणायुक्त/अभिप्रेरणा रहित पुनर्बलन की पर्याप्तता/अपर्याप्तता।)
14. भाषा की सरलता, बोधगम्यता, प्रासंगिकता एवं सततता पर समीक्षा करें तथा उन स्थलों का स्पष्ट संकेत करें जहाँ भाषा निर्जीव एवं दुरूह हो।
15. वर्तनी की त्रुटियों की सूची प्रस्तुत करें।
16. पुस्तक की प्रभावकारिता पर स्तरानुकूल प्रतिक्रिया लिखे--प्रभावी/कम प्रभावी/ अति अल्प प्रभावी

17. पुस्तक में प्रदर्शित चित्रों, रेखाचित्रों मानचित्रों की उपयुक्तता/अनुपयुक्तता पर अपना मत दें।

18. पुस्तक के कलेवर (आकार, बाइन्डिंग, सिलाई, मुद्रण, अक्षरों का आकार, स्याही की समानता, अस्पष्टता, धूमिलता आदि। पक्षों पर अपना मत व्यक्त करें।

19. अन्य उल्लेखनीय पक्ष जो पृच्छा में समाहित न हो उनकी ओर संकेत एवं सुझाव देने का कष्ट करें।

समीक्षा के अन्तर्गत सर्वप्रथम इस बिन्दु पर विचार करना है कि सामाजिक विज्ञान भाग-1 में विषय वस्तु को अनुशासित कर विस्तार और पुनरावृत्ति के दोष को दूर करने में कहाँ तक सफलता मिली है। वस्तुतः सामाजिक विज्ञान एक विषय न होकर सामाजिक जीवन को प्रभावित करने वाले विविध विषयों का एक क्षेत्र है जिसके अन्तर्गत मानविकी शास्त्र सामाजिक जीवन की माला में पुष्प की भाँति एक सूत्र में आबद्ध होकर संकुल का स्वरूप धारण कर लेता है और मानव सभ्यता के क्रमिक विकास का आख्यान रूमानी शैली में प्रस्तुत करता है। पुस्तक के प्राक्कथन में लिखा भी है कि इसका उद्देश्य छात्रों को मानव सभ्यता के क्रमिक विकास से परिचित कराना है।

इतिहास वस्तुतः राजवंशों के उत्थान पतन, युद्ध-विग्रहों, कुचक्रों और दुरभिसन्धियों का लेखाजोखा मात्र नहीं है, अपितु यह मानव सभ्यता के क्रमिक विकास का आख्यान है। अतः इसके अन्तर्गत ऐसी अन्तर्वस्तु होनी चाहिए जो उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हो। पुस्तक का प्रारम्भ प्रागैतिहासिक काल के मानव से किया गया है। पृथ्वी पर जीवन किस प्रकार प्रारम्भ हुआ, पाषाण युग में ही सामुदायिक जीवन का प्रारम्भ किस प्रकार हो गया और इस प्रसंग में प्रकृति को अनुकूल बनाने एवं अपने रहन सहन में सुधार के लघु प्रयत्न कैसे प्रारंभ हुए, इसका वर्णन पुस्तक में बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

आदि मानव ने अपनी रक्षा एवं पेट भरने के लिये किस प्रकार अस्त्र-शस्त्र निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ की तथा स्थिर जीवन जीने के लिये पशु पालन एवं खेती बाड़ी का प्रारम्भ कैसे हुआ, यह बड़े ही रोचक ढंग से स्पष्ट किया गया है। अग्नि का आविष्कार प्रागैतिहासिक मानव की सचमुच एक

बड़ी उपलब्धि थी। मनुष्य के रहन-सहन में आये हुए महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों का उल्लेख पुस्तक में अच्छे ढ़ंग से प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार पहिये के आविष्कार ने मनुष्य के सामाजिक जीवन में जो क्रान्ति उत्पन्न की तथा इससे यातायात और वस्त्रों के निर्माण का जो मार्ग प्रशस्त हुआ वह इसके पूर्व प्रकाशित इतिहास की पुस्तकों में इस ढ़ंग से नहीं मिलता है। पुस्तक में ऐसे अध्याय सम्मिलित किए गये हैं जिनमें मानव सभ्यता के क्रमिक विकास की झलक मिलती है।

पुस्तक में कुल 14 अध्याय है- प्रागैतिहासिक मानव जीवन का प्रारम्भ--नदी घाटी की सभ्यताएं--प्राचीन संसार की कुछ महत्त्वपूर्ण सभ्यताएँ--विश्व के प्रमुख धर्म मध्यकालीन संसार--यूरोप में पुनर्जागरण--औद्योगिक क्रान्ति--संसार की कुछ महत्त्वपूर्ण राजनैतिक क्रान्तियाँ तथा उनके परिणाम--भारत की सांस्कृतिक विरासत--भारत में नव जागरण--स्वतंत्रता के लिये भारत का संघर्ष--प्रजातंत्र में जन जीवन--राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय सुरक्षा तथा विदेशी नीति।

इन अध्यायों के शीर्षक तथा इनके अन्तर्गत उल्लिखित विषयवस्तु के अध्ययन से, छात्र के समक्ष सृष्टि के आरम्भ से लेकर वर्तमान तक, मानव सभ्यता के क्रमिक विकास की झाँकी प्रस्तुत होती है। इस दृष्टि से पुस्तक लेखन सफल है। विषयवस्तु का अनावश्यक विस्तार कहीं भी नहीं है और पुनरावृत्ति का दोष नहीं आ पाया है। पहले प्रकाशित पुस्तकों में अनावश्यक विस्तार, पुनरावृत्ति है तथा तथ्यों की बोझिलता है जिसके कारण प्रस्तुति नीरस हो जाती है। परन्तु इस पुस्तक में विषयवस्तु को अनुशासित कर विस्तार और पुनरावृत्ति के दोष से बचने का प्रयास किया गया है। इतने ही तथ्यों का चयन किया गया है जिनसे मानव सभ्यता के क्रमिक विकास का आख्यान छात्रों के समक्ष सजीव ढ़ंग से प्रस्तुत हो जाय। यह भी प्रयास किया गया है कि भौगोलिक परिस्थितियों का मानव जीवन पर प्रभाव तथा मानव द्वारा उसके अनुकूलन हेतु किये गये प्रयासों का विवरण सही परिप्रेक्ष्य में छात्रों की समझ में आ जाय। तथ्यों की दृष्टि से पुस्तक बोझिल नहीं है पर कहीं-कहीं तथ्यों की अभिव्यक्ति इसे अवश्य नीरस बना देती है। इतिहास, नागरिक शास्त्र, भूगोल और इतिहास को पृथक-पृथक पढ़ाने से पाठ्यक्रम अनावश्यक सीमा तक विस्तृत हो जाता है। परन्तु एक निश्चित वय वर्ग के छात्र की शारीरिक और मानसिक क्षमता की एक निश्चित सीमा होती है। इस सीमा के अन्तर्गत ही सर्वोत्तम की प्राप्ति का आदर्श सुनिश्चित करना अभीष्ट होता है। इस दृष्टि से सामाजिक विज्ञान भाग-1 के अन्तर्गत समाविष्ट प्रकरण जहाँ एक ओर हाईस्कूल के वय वर्ग के छात्र की शारीरिक और मानसिक क्षमता के अनुपात में विषय विस्तार को कम करते हैं वहीं दूसरी ओर महत्व की किसी बात को उपेक्षित भी नहीं करते हैं। समाविष्ट प्रकरणों पर दृष्टि डालने पर लक्ष्य बहुत ही स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। यह सामाजिक विज्ञान भाग-1 के प्राक्कथन में निरूपित उद्देश्य की पूरी

तरह से पूर्ति करता है।

अब हम पृच्छा पत्र के दूसरे बिन्दु पर विचार करेंगे जिसके अन्तर्गत एक बहुत ही आवश्यक एवं महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठाया गया है कि छात्रों में व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों की झलक विकसित करने में पुस्तक कहाँ तक सहायक है।

व्यक्ति समाज का घटक है और समाज व्यक्ति का स्वनिर्मित आदर्श। अतः समाज में व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों एवं आकांक्षाओं के विविध पक्षों की प्रस्तुति ही सामाजिक विज्ञान की विष्यवस्तु (अनुशासन) है। अतः हमारा लक्ष्य छात्र की चेतना में प्रारम्भ से ही व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों की समझ का विकास करना है एवं तदनुकूल व्यवहार परिवर्तन और समायोजन है। छात्र के शारीरिक, मानसिक ओर चारित्रिक विकास के सन्दर्भ में इस सार्थकता को उजागर करना ही समाजिक विज्ञान की पुस्तक लेखन का उद्देश्य होना चाहिए। समाज के कुछ मूल्य होते हैं। सामाजिक विज्ञान का विशद क्षेत्र इन मूल्यों का धारक होता है। दीर्घ परम्परा एवं अध्ययन तकनीक की विशिष्टता के कारण इनकी अनुशासनात्मक प्रकृति अनमनीय हो जाती है। इससे सतत सम्बर्द्धनशील समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तन में कठिनाई उत्पन्न होती है। अनमनीय अनुशासन के कारण समाज में नवीन मूल्यों का त्वरित सृजन हो पाता। अतः विकासोन्मुख समाज के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह ऐसे अनुशासनों से अपने को आबद्ध न करें जो उसके विकास में बाधक हों। मुख्य तथ्य यह है कि समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल नवीन मूल्यों के सृजन का मार्ग प्रशस्त होना चाहिए।

यदि विद्यालय की स्थापना के पीछे समाज का मुख्य लक्ष्य समर्पित, कर्मठ, सुबुद्ध और विवेकशील नागरिकों का निर्माण है तो सामाजिक विज्ञान की पुस्तक के लेखक का दायित्व विशद एवं गंभीर है। देखना है कि इस दृष्टि से पुस्तक कहाँ तक उपयोगी है?

पाठ्यक्रम में नदी घाटी की सभ्यताएँ, प्राचीन संसार की कुछ महत्वपूर्ण सभ्यताएँ, मध्यकालीन संसार, यूरप में पुनर्जागरण, औद्योगिक क्रान्ति, संसार की कुछ महत्वपूर्ण राजनीतिक क्रन्तियाँ तथा उनके परिणाम, भारत की सांस्कृतिक विरासत और भारत में नव-जागरण आदि अध्याय लेकर इनके माध्यम से सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक विकास की झलक देने का प्रयास पुस्तक में किया गया है।

परन्तु यह वर्णन वैसा ही है जैसा कि इतिहास की प्राचीन पुस्तकों पिष्टपेषित रूप में मिलता है जो अपर्याप्त तथा एंकागी है। लेखन में मुख्य प्रयास यह होना चाहिए था कि छात्रों में सामाजिक विकास की समझ उत्पन्न हो। समाज के वर्तमान स्वरूप को समझने हेतु अतीत को आधार बनाकर

उन विचार धाराओं का सूक्ष्म उल्लेख भी होना चाहिये था जिनके फलस्वरूप समाज का रूपान्तरण होता रहा।

इतिहास के नव-लेखन में इधर दो आधुनिक प्रवृत्तियाँ उभरकर परिलक्षित हुई हैं जो सातत्य और परिवर्तन के सिद्धान्त को सामाजिक विकास के क्रम में रेखांकित करती चलती है। ये दोनों सिद्धान्त परस्पर विरोधी से लगते हैं, परन्तु ये विरोधी हैं नहीं। सातत्य के भीतर भी परिवर्तन के अंश हैं। इसी प्रकार परिवर्तन भी अपने भीतर सातत्य का कुछ अंश लिये रहता है। वास्तव में हमारा ध्यान उन्हीं परिवर्तनों पर जाता है जो हिंसक क्रान्तियों या भूकम्प के रूप में अचानक फट पड़ते हैं। प्रत्येक भूगर्भशास्त्री जानता है कि धरती की सतह में जो बड़े-बड़े परिवर्तन होते हैं, उनकी चाल बहुत धीमी होती है और भूकम्प से होने वाले परिवर्तन उनकी तुलना में अत्यन्त तुच्छ समझे वाले हैं। इसी प्रकार क्रान्तियाँ भी धीरे-धीरे होने वाले परिवर्तन और सूक्ष्म रूपान्तरण की बहुत लम्बी प्रक्रिया का बाहरी प्रमाण मात्र होती है।

इस दृष्टि से देखने पर स्वयं परिवर्तन एक ऐसी प्रक्रिया है जो परम्परा के आवरण में लगातार चलती रहती है। बाहर से अचल दीखने वाली परम्परा भी, यदि जड़ता और मृत्यु का पूरा शिकार नहीं बन गई है, तो धीरे-धीरे वह भी परिवर्तित हो जाती है। इतिहास में कभी-कभी ऐसा भी समय आता है जब परिवर्तन की प्रक्रिया तेज हो जाती है। लेकिन साधारणतयः बाहर से उसकी गति दिखाई नहीं देती। परिवर्तन का बाहरी रूप प्रायः निस्पंद रहता है।

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में सामाजिक विज्ञान, भाग-। की पुस्तक लेखन में समय-समय पर इतिहास में घटित परिवर्तनों, आन्दोलनों और क्रान्तियों की प्रकृति, स्वरूप, विस्तार एवं प्रगति को, बालकों में समझ विकसित करने का प्रयास अवश्य किया जाना चाहिये था जिससे परम्परागत दृष्टिकोण में नवीनता का सम्पुट उभरता।

मानव-सभ्यता का विकास विभिन्न चरणों में हुआ है। अतः यह आवश्यक है कि एक चरण से दूसरे चरण में संक्रमित परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया को बड़े सरल एवं रोचक ढ़ंग से प्रस्तुत किया जाना चाहिये ताकि छात्रों में परिवर्तन और विकास की प्रक्रियाओं की पृष्ठभूमि में निहित विचार धाराओं की समझ का विकास हो।

यद्यपि यह सच है कि पुस्तक में चयनित अध्याय ऐसे हैं जिनसे छात्रों के समक्ष आरम्भ से लेकर वर्तमान काल तक मानव सभ्यता के क्रमिक विकास की झाँकी प्रस्तुत होती है किन्तु तथ्यों की प्रस्तुति में

परिमार्जन कर इसे इस रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिये जिससे व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों की गहराईयों के विकास एवं तदनुकूल व्यवहार परिमार्जन की अन्तःप्रेरणा जागृत हो॥

आगे अब विचार यह करना है कि मानव सभ्यता के विकास ने आधुनिक दुनियाँ की जैसा वर्तमान स्वरूप प्रदान किया है, पुस्तक में यह पक्ष छात्रों के लिये कहाँ तक बोधगम्य है? वर्तमान युग विज्ञान और तकनीकी युग है। विज्ञान और तकनीकी विकास के फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व एक नगर बन गया। स्थान की दूरी की समाप्ति से भिन्न-भिन्न देशों की पृथकता समाप्त हो गई है। विश्व के किसी स्थान विशेष में हुई घटना स्थानीय न रहकर समग्र विश्व को प्रभावित करती है। विश्व के एक इकाई हो जाने के कारण जाति, रूप, रंग, धर्म, भाषा और संस्कृति की विविधताओं के होते हुए भी सम्पूर्ण मानव जाति एक हो गई है। आज कोई राष्ट्र अकेले नहीं रह सकता। अकेला रहना पिछड़ने का द्योतक है। अतः आज वैज्ञानिक, तकनीकी, औद्योगिक और आर्थिक प्रगति से सम्पूर्ण मानव समाज प्रभावित है। इससे विश्व मानव समाज का विकास हुआ, विश्व समाज की संकल्पना उभरी है और युवाजनों के मन में विश्व समुदाय और विश्व शान्ति के प्रति उत्तरदायित्व की भावना आयी है। जीवन शैली और विचार धाराओं की विभिन्नताओं में इन्द्रधनुषी सौन्दर्य सरीखा तालमेल आया है। छात्रों की चेतना में सामाजिक विज्ञान भाग-। की पुस्तक पढ़कर यह सम्बोध बनता है, यह प्रशंसनीय है।

भारतीय इतिहास की मुख्य प्रवृत्तियों का ज्ञान कराना आज शिक्षण का महत्वपूर्ण अंग है। इसी प्रकार इस अन्तर्राष्ट्रीय युग में छात्रों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे सम्पूर्ण मानव जाति के इतिहास की मुख्य प्रवृत्तियों का ज्ञान प्राप्त करें ताकि वे मानव जाति की उस परम्परा को समझ सकें जिसने आधुनिक दुनियाँ को वर्तमान स्वरूप प्रदान किया है।

वास्तविकता तो यह है कि इतिहास तो सम्पूर्ण रूप से एक है। विश्व इतिहास के व्यापक संदर्भ से ही आज हम अपने देश का भी इतिहास सही परिप्रेक्ष्य में समझ सकते है। राष्ट्रीय सीमाओं और परस्पर विभिन्नताओं के बावजूद सारी धरती एक है और इस पर बसने वाले मनुष्यों में समानता है। अतः विश्व इतिहास का व्यापक परिप्रेक्ष्य जहाँ विश्व को समझाने के लिये आवश्यक है, वहीं अपने देश को समझने के लिये भी छात्रों को माध्यमिक स्तर पर विश्व के इतिहास का व्यापक ज्ञान कराते हुए भारतीय इतिहास के उन विशिष्ट स्थलों की जानकारी देना जिससे समसामयिक भारत को समझाने में सहायता मिलती है, इस पुस्तक का भी अभिप्रेत रहा है और लेखक मंडल को इसमें सफलता भी मिली है।

इस पृष्ठभूमि पर ही नदी घाटी की सभ्यताओं के अन्तर्गत न केवल सिन्धु घाटी की सभ्यता को पुस्तक में लिया गया है अपितु इसके साथ ही मेसोपोटामिया की सभ्यता, मिस्र की सभ्यता तथा चीन की सभ्यता को भी लिया गया है। प्रत्येक सभ्यता का वर्णन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक स्तम्भों के अन्तर्गत करने के साथ ही व्यवसाय, कला, शिल्प, व्यापार आदि पर भी अच्छे ढंग से प्रकाश डाला गया है। वर्णन रोचक एवं प्रभावोत्पादक है। इस अध्याय को पढ़कर छात्र नदी घाटी की सभ्यताओं की सामान्य विशेषताओं को ज्ञात कर सकते हैं और मानव सभ्यता के विकास में इनके योगदान को रेखांकित कर सकते हैं। प्रत्येक सभ्यता की रूपरेखा प्रस्तुत करने के बाद अन्त में प्रत्येक सभ्यता की देन को संक्षिप्त किन्तु प्रभावकारी ढंग से लिखा गया है जिससे पुस्तक की उत्कृष्टता बढ़ गई है।

प्राचीन संसार की कुछ महत्त्वपूर्ण सभ्यताओं के अन्तर्गत यूनानी सभ्यता, रोम सभ्यता और प्राचीन भारत की सभ्यता का वर्णन पुस्तक में उपलब्ध है। इन्हें पढ़कर यह सम्बोध दिया गया है कि सभी सभ्यताएँ अपने आन्तरिक और वाह्य प्रभावों के परिणाम हैं। प्रत्येक सभ्यता की अपनी अपनी विशिष्टताएँ हैं और इन संस्कृतियों के योगदान से विश्व संस्कृति का विकास हुआ है।

प्रत्येक अध्याय विश्व इतिहास के व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। जहाँ विश्व के महत्त्वपूर्ण धर्मों की चर्चा पुस्तक में की गई हैं वहाँ हिन्दू धर्म, जैन तथा बौद्ध धर्म, पारसी धर्म, यहूदी धर्म, इसाई धर्म, इस्लाम धर्म, सिख धर्म और ताओं धर्म तथा कन्फ्यूशियस आदि सभी धर्मो का उल्लेख किया गया है और छात्रों के समक्ष यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि मानव जीवन में धार्मिक विचारों का विशेष महत्त्व रहा है। सभी धर्मो में अन्तर होते हुए भी सभी धर्मो का सार एक है। सभी धर्मों ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से दर्शन, साहित्य, संगीत, कला तथा स्थापत्य के विकास में योगदान दिया है तथा यह भी बताया गया है कि जब धर्मों में सरलता के स्थान पर जटिलता उत्पन्न हो जाती है तो उसमें सुधार हेतु आन्दोलन प्रारम्भ हो जाते हैं। सर्वधर्म समभाव का सम्बोध जागृत करने का पुस्तक में सफल प्रयास किया गया है जो आज के विषम युग की एक अपरिहार्य आवश्यकता है।

मानव सभ्यता के विकास में आधुनिक सभ्यता को जो वर्तमान स्वरूप प्राप्त हुआ है उसके निर्माण में यूरोप के पुनर्जागरण, औद्योगिक, क्रान्ति संसार की कतिपय महत्त्वपूर्ण राजनीतिक क्रान्तियों एवं भारत के नव-जागरण का विशेष योगदान है। इन सभी पर पुस्तक में पृथक-पृथक अध्याय हैं जिनमें जीवन के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन, विश्वास के स्थान पर तर्क की प्रतिष्ठा, सामन्ती संगठन के प्रति असंतोष, अंधविश्वासों की समाप्ति, वैज्ञानिक चिन्तन का प्रारम्भ, राष्ट्रीयता की भावना का उदय,

धर्म सुधार आन्दोलन एवं नये देशों की खोज हेतु साहसिक समुद्री यात्राओं की झलक मिलती है। इसी प्रकार औद्योगिक क्रान्ति के कारण औद्योगिक संस्थानों में मशीनों के प्रयोग से मानव सभ्यता के विकास में एक नवीन युग का सूत्रपात, अन्य देशों में औद्योगिक क्रान्ति, प्रारम्भ में भारतीय उद्योगों की हानि, फिर बाद में उद्योगों को प्रोत्साहन, मशीनीकरण, औद्योगिक कारखानों का विकास, औद्योगिक केन्द्रों की ओर जनसंख्या का पलायन, नवीन शहरों का जन्म, पूँजीवाद का उद्भव, श्रमिक वर्ग का उदय, नवीन बाजारों की खोज, साम्राज्यवाद का प्रसार, कारखानों से सम्बन्धित कानून, ट्रेड यूनियन और समाजवादी आन्दोलन, जो आधुनिक सभ्यता की पहचान हैं, का पुस्तक में संक्षेप में अच्छा निरूपण मिलता है।

राजनीतिक क्रान्तियों के अन्तर्गत इंगलैण्ड, अमेरिका, फ्रांस और रूस की क्रान्तियों के कारण, पृथक-पृथक सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किये गये हैं तथा सामाजिक एवम् राजनीतिक परिवर्तन की प्रभावकारिता की ओर भी इंगित किया है। इनके दूरगामी परिणाम जो संसार के विभिन्न देशों में परिलक्षित हुए और जिनसे आधुनिक सभ्यता को जो वर्तमान स्वरूप प्राप्त हुआ उनकी ओर भी पुस्तक में संकेत मिलता है। इसी प्रकार 19वीं शताब्दी में भारतीय संस्कृति में पाश्चात्य विचारों के सम्मिश्रण के परिणाम स्वरूप जो धर्म सुधार तथा समाज सुधार की लहर ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन थियोसोफिकल सोसाइटी आदि के माध्यम से आयी और उसके फलस्वरूप जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में जो नया दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ और भारतीय राष्ट्रीयता का विकास हुआ उन सब पर प्रकाश डाला गया है, पर प्रस्तुति में नीरसता का पुट भी कहीं-कहीं मिलता है तथा कहीं-कहीं तथ्यों में दुरूहता भी है। वैसे यदि इस दोष को दूर कर दिया जाय तो मानव सभ्यता के विकास में आधुनिक दुनियाँ को जैसा वर्तमान स्वरूप आज प्राप्त है, उसकी झलक पुस्तक में मिलती है।

अब एक अन्य पक्ष जिसके आधार पर यह समीक्षा करनी है विश्व की विभिन्न संस्कृतियों के पारस्परिक आदान-प्रदान को पुस्तक में कहाँ तक उजागर किया गया है, पर विचार करना है। वस्तुतः मानव जाति की प्रगति में विभिन्न संस्कृतियों का पारस्परिक आदान-प्रदान महत्वपूर्ण तत्व है। अतः मानव जाति की सामूहिक परम्परा में विभिन्न जातियों की संस्कृतियों के योगदान का उल्लेख करना तथा छात्रों में पूरी परम्परा की सराहना करने वाली दृष्टि का विकास करना, सामाजिक विज्ञान का प्रमुख लक्ष्य है। इस सन्दर्भ में भारतीय संस्कृति का प्रमुख रूप से ज्ञान कराना तथा विश्व की विभिन्न नस्लों, भाषाओं, संस्कृतियों की विविधताओं का गौण रूप से उल्लेख करना अभीष्ट है।

चूँकि विश्व संस्कृति एक अत्यन्त विशद और व्यापक क्षेत्र है, अतः इस पुस्तक में चीन की

संस्कृति, मेसोपोटामिया, असीरिया, बेबीलोन, मिस्र एवं रोम की प्राचीन सभ्यताओं का नामोल्लेख करके यह बताय गया है कि चीन की संस्कृति के अतिरिक्त अन्य उपर्युक्त संस्कृतियाँ काल के गाल में समा चुकी हैं और कुछ अवशेष ही उनकी गौरव गाथा गने के लिए बचे हुए हैं किन्तु भारत की सांस्कृति विरासत, कालिक और राजनीतिक उथल पुथल के बावजूद भी आज शाश्वत है। भारतीय संस्कृति की ओर छात्रों को आकर्षित करने हेतु यह एक अच्छा प्रारम्भ है। छात्रों में उत्कंठा जागृत होती है कि भारतीय संस्कृति में ऐसी कौन सी विशिष्टताएं हैं जो समय के थपेड़ों को झेलती हुई आज भी जीवन्त है। इसे स्पष्ट करने हेतु भारतीय संस्कृति की विशेषताओं में अनेकता में एकता, आत्मसात की भावना और समन्वय की प्रवृत्ति पर अच्छे ढ़ंग से पुस्तक में प्रकाश डालते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि भारतीय संस्कृति की जड़ों की स्थापना शताब्दियों पूर्व हुई और उसका निरन्तर विकास विभिन्न सांस्कृतिक धाराओं में सदियों से हुआ है। यह एकता और सम्पूर्णता देश ने शताब्दियों में अर्जित की है। वह विविधता में एकता एवम् आदान-प्रदान का दृश्य उपस्थित करती है। यह अंश सराहनीय है।

किन्तु आगे चलकर स्थापत्य कला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत कला भाषा और साहित्य, साहित्यिक कृतियों आदि का विवरण बहुत ही विस्तार से लिखा जाने के कारण बोझिल, नीरस और उबाऊ है। इसे संक्षिप्त और रूचिकर ढ़ंग से पुनः लिखने की आवश्यकता है। इस प्रसंग में प्राचीन भारत के प्रमुख दर्शनिकों और वैज्ञानिकों पर लिखी सामग्री का कथ्य बोझिल तो नहीं है किन्तु रोचक कम है। इसे और सरल तथा स्पष्ट ढंग से पुनर्लेखन समीचीन होगा।

जहाँ तक विश्व की समसामयिक समस्याओं, विश्व शान्ति, अन्तर्राष्ट्रीय सहकार, उप-निवेश उन्मूलन और मानव अधिकारों की रक्षा आदि समस्याओं के प्रति भारत की भूमिका को स्पष्ट करने की बात है, इन समस्याओं और इसके प्रति भारत की जो प्रतिक्रिया है उसका उल्लेख पुस्तक में है, तो भी जैसा बोध छात्रों को देना चाहिए वैसा कहीं-कहीं कम बन पड़ा है।

अच्छा यह होगा कि पुस्तक में एक नया और स्वतंत्र अध्याय "एशियाई और अफ्रीकी देशों का स्वतंत्र राष्ट्रों के रूप में उदय" के रूप में जोड़ दिया जाय। इस अध्याय के लेखन के लिये प्रारम्भ में बताया जाय कि "एशियाई तथा अफ्रीकी देशों क स्वतंत्र राष्ट्रों के रूप में उदय आधुनिक इतिहास की एक सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। इन देशों ने अपने साम्राज्यवादी शासकों के विरूद्ध लम्बे और कठोर संघर्ष के बाद स्वतंत्रता प्राप्त की है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली द्वारा इस सम्बन्ध में निम्नलिखत

सुझाव दिये गये हैं, जिनके आधार पर इस अध्याय को लिखकर पुस्तक में इसे समविष्ट किया जाय:

(1) छात्रों को बताया जाय कि विश्व के कितने देश अभी तक स्वाधीन नहीं हुए हैं

(2) दुनियाँ के आज के राजनीतिक मानचित्र की तुलना 1914, 1945, 1960 और 1978 मानचित्र से करते हुए ऐशिया के ऐसे देशों की सूची तैयार कराई जाय जो 1945 तथा 1960 के मध्य और 1961 तथा 1978 के मध्य स्वतंत्र हुए।

(3) ऐसे देशों की सूची बनाई जाय जो 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के समय उसके सदस्य थे। बाद में इस सूची में नये-नये सम्मिलित होते गये देशों की जानकारी दी जाय।

(4) नये सदस्य ऐशिया तथा अफ्रीका के नव स्वतंत्र देश ही हैं। छात्रों को पृथक-पृथक दल में विभक्त कर इंडोनेशिया, वियतनाम, अल्जीरिया, अंगोला जैसा देशों के स्वाधीनता आन्दोलन सम्बन्ध में अध्ययन करने को प्रोत्साहित किया जाय जिसके अन्तर्गत कब, कैसे और किसके द्वारा जीत गया उनके स्वाधीनता संग्राम के प्रमुख मोड़, स्वाधीनता संग्राम के नेता और संगठन, संघर्ष के तरीके और शासकों द्वारा अपनायी गयी नीतियों तथा उनके स्वाधीनता संग्राम में अन्य देशों की जनता और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की भूमिका आदि समाहित हों।

(5) छात्रों को इस अध्याय के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें और बताई जॉय—

(क) एक दूसरे के साथ घनिष्ठ सम्पर्क कायम करने और विश्व समस्याओं के प्रति समान दृष्टिकोण अपनाने के प्रयास फलस्वरूप बांडूंग सम्मेलन, निर्गुट आन्दोलन, अफ्रीकी एकता संगठन का इतिवृत्त।

(ख) निर्गुट आन्दोलन के बुनियादी तत्त्व और उसमें शामिल देश।

(ग) निर्गुट राष्ट्रों द्वारा नि:शस्त्रीकरण, शांति, उपनिवेशवाद, रंगभेद, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों की समस्याओं के बारे में अपनायी गई नीतियाँ।

शेष बातें पुस्तक में भारत की विदेशी नीति के अन्तर्गत गुटनिरपेक्षता, अन्य राष्ट्रों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध, पंचशील, शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व, पड़ोसी के साथ सम्बन्ध, संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में शान्ति की स्थापना हेतु योगदान, नि:शस्त्रीकरण, उपनिवेशवाद का विरोध, जाति भेद और रंगभेद का विरोध तथा संयुक्त राष्ट्र संघ को विश्व व्यापी तथा संस्था बनाने के प्रयास तथा इसके विभिन्न अंगों और उपकरणों के साथ सहयोग आदि संक्षेप में प्रभावोत्त्वादक ढंग से प्रस्तुत की गई हैं। केवल ऐशिया तथा अफ्रीकी देशों का, स्वतंत्र राष्ट्रों के रूप में उदय, सम्मिलित करके पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास वैसे ही पुस्तक में लिखा गया है जैसा कि इतिहास की

प्राचीन पुस्तकों में हैं, जबकि इसे एक नई दृष्टि से लिखने एवं छात्रों को नया बोध देने की आवश्यकता हैं। छात्रों को यह बताने की आवश्यकता है कि जो मूल्य हमारे राष्ट्रीय जीवन के लिए आज बुनियादी हैं उनका विकास और पुष्ट पोषण हमारे स्वाधीनता संग्राम के समय में ही हो गया था इन मूल्यों ने हमारे राष्ट्र के चरित्र को प्रभावित किया है और ये हमारी राष्ट्रीयता के मूलाधार हैं। इस मूल्यों की समझ विकसित करने की दृष्टि से भारत का स्वाधीनता संग्राम को नये परिप्रेक्ष्य में लिखने की आवश्यकता है।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम भावात्मक एकता एवं राष्ट्रीय एकता को सम्बोधित करने के उद्देश्य से आज सर्वथा नये ढ़ंग से प्रस्तुत करना बहुत उपादेय होगा। हमें स्थान-स्थान पर यह इंगित करना चाहिए कि स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भारतीय जनता की एकता पहिले से कहीं अधिक सुदृढ़ हुई और उसके फलस्वरूप अंगरेजी साम्राज्यवाद का उन्मूलन होकर प्रभुसत्ता सम्पन्न स्वतंत्र देश का नवोदय हुआ।

त्वतंत्राता संग्राम की प्रकृति को स्पष्ट करने हेतु इस पर बल देने की आवश्यकता है कि धर्म, भाषा, जाति और सम्प्रदाय के भेद के बावजूद भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का स्वरूप अखिल देशीय रहा। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में देश के सभी भागों और सभी समुदाय के नेताओं और स्वयं सेवकों ने एक लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अपने को समर्पित कर दिया। गाँधीजी के नेतृत्व में स्वतंत्राता आन्दोलन देश व्यापी जन-आन्दोलन बन गया।

इस प्रसंग में धर्म निरपेक्षाता को भी बड़े स्वाभाविक ढ़ंग से जोड़कर प्रस्तुत किया जाना चाहिए। सभी कोनों से सभी लोगों ने विभिन्नताओं के बावजूद सम्पूर्ण देश के लिये और इस देश में बसने वाले सभी निवासियों के लिये स्वाधीनता की माँग एक स्वर से की और इस हेतु अपने को संगठित कर लक्ष्य की प्राप्ति की। यह धर्मनिरपेक्षाता, भावात्मक एकता और राष्ट्रीय एकता का सबसे प्रबल स्रोत है।

कथ्य को कुछ ऐसे ढ़ंग से प्रस्तुत किया जाय कि छात्रों को स्वतः यह बोध हो कि स्वतंत्राता संग्राम एक जन आन्दोलन था। इस आन्दोलन के लोकतंत्री स्वरूप को भी वर्णन में उभारा जाय। इस पर घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में बारम्बार बल दिया जाय कि लोकतंत्र, समानता और लोकप्रिय प्रभुसत्ता के मूल्य जो स्वतंत्र भारत के संविधान के मूल स्रोत हैं, वे भारतीय जन-मानस में स्वतंत्राता संग्राम के दौरान ही विकसित हुए थे और उन्हें अक्षुण्ण रखना हमारा पुनीत कर्तव्य है।

छात्रों को भारत के नव निर्माण एवं विकास के लिये यह सम्बोध देना भी आवश्यक है कि स्वतंत्राता संग्राम का ध्येय स्वतंत्राता की प्राप्ति ही न था अपितु यह तो एक आवश्यक पूर्व शर्त समझी

जानी चाहिए देश की भावी प्रगति और विकास के लिये। आन्दोलन का लक्ष्य दूरगामी था, यह बालकों की चेतना में सम्प्रेषित करने पर ही लक्ष्य की पूर्ति होगी

स्वतंत्रता प्राप्ति का लक्ष्य वस्तुतः सामाजिक समानता के आधार पर भारतीय समाज का पुनर्निमाण, आर्थिक विकास द्वारा गरीबी का उन्मूलन और न्याय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की स्थापना है। इस अध्याय को इस ढंग से लिखकर छात्रों की ऊर्जा का सदुपयोग देश का भविष्य संवारने की दिशा में, किया जा सकता है।

यह भी इस प्रसंग में रेखांकित करना आवश्यक है कि भारतीय समाज के पुनर्निर्माण और सम्पूर्ण विश्व के ऐतिहासिक विकास के प्रमुख ध्येय को लेकर चलने वाले अभियान का आधार संकीर्ण वर्गवाद नहीं हो सकता।

स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं जिन्हें उद्धृत कर छात्रों के समक्ष यह उजागर किया जा सकता है कि यह आन्दोलन जनता की अभिव्यक्ति था जबकि धर्म, रीति रिवाज आदि अनेक पहलुओं की दृष्टि से अनेक भिन्नताएँ विद्यमान थी। इन विविधताओं का सम्मान स्वतंत्र भारत में, गौरव की वस्तु है। एक लोकतंत्री तथा समाजवादी समाज के निर्माण के लक्ष्य को लेकर धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के आधार पर भारत की प्रगति और विकास के लिये छात्रों का आह्वान करना सही दिशा होगी।

इस प्रकार समाजवाद, धर्म निरपेक्षवाद, दायित्व बोध, अनुशासन, भावनात्मक एकता, राष्ट्रीय एकता और अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना को सही परिप्रेक्ष्य में दृष्टान्तों के द्वारा छात्रों को समझाने की आवश्यकता है। इन समस्त विचार विन्दुओं को समाहित करते हुए भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास की पुनर्लेखन की आवश्यकता है।

पुस्तक में राष्ट्रीय एकता पर स्वतंत्र अध्याय दिया है। इस अध्याय में राष्ट्रीय एकता का अर्थ, इसकी आवश्यकता, वर्तमान भारत में इसके विकास हेतु किये जा रहे महत्वपूर्ण उपायों की चर्चा की गई है। अध्याय के अन्त में राष्ट्रीय एकता को विघटित करने वाले तत्वों का उल्लेख किया गया है, जबकि इन्हें पहले प्रस्तुत करने के बाद ही राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने वाले उपायों का उल्लेख किया जाना चाहिए था। शिक्षा की नई नीति में भावात्मक एकता और राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने का लक्ष्य रखा गया है। इस लक्ष्य को पूरा करने की दिशा में सबसे बड़ा योगदान सामाजिक विज्ञान होता है। इस दृष्टि से इसे सजीव, रोचक और प्रभावोत्पादक ढंग से पुनः लिखने की आवश्यकता है।

समसामयिक 'भारत को समझने के लिये जिस पृष्ठभूमि की आवश्यकता है उसका उल्लेख पुस्तक में है और उसके आधार पर स्वतंत्रता के लिये देश व्यापी संघर्ष, प्रजातंत्र में नव जीवन, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय सुरक्षा और विदेश नीति, भारत और संयुक्त राष्ट्र संघ आदि अध्याय लिखे गये हैं जिसके अन्तर्गत प्रतिपादित सामग्री से समसामयिक भारत की अच्छी झलक मिलती है। प्रजातंत्र में नव जीवन अध्याय बड़े विस्तार से लिखा गया है जो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश की प्रगति और विकास की छात्रों के समक्ष पूरी तस्वीर प्रस्तुत कर देता है।

जहाँ तक पुस्तक में प्रस्तुतीकरण की आन्तरिक सम्बद्धता की बात है, इसके लिये विषय सूची पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। इसके अवलोकन से स्पष्ट है कि प्रथम दृष्ट्या आन्तरिक सम्बद्धता को बनाये रखने के लिये विषय सामग्री कालक्रमानुसार सर्वप्रथम प्राचीन काल फिर मध्य काल और अन्त में आधुनिक काल और समसामयिक संसार का इतिवृत्त प्रस्तुत किया गया है। अपवाद स्वरूप केवल एक अध्याय है, भारत की सांस्कृतिक विरासत।

उक्त अध्याय के अन्तर्गत भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ—प्राचीन एवं मध्यकालीन कलाएँ, भाषा एवं साहित्य-प्राचीन भारत के प्रमुख दार्शनिक एवं वैज्ञानिकों का उल्लेख है। विषयवस्तु के अन्तर्गत आधुनिक काल से सम्बन्धित कुछ भी नहीं है। अतः इसका स्थान 9वें अध्याय में अनुपयुक्त है। इसे आधुनिक युग का इतिवृत्त प्रस्तुत करने के पूर्व प्रस्तुत किया जाता तो अधिक संगत होता। इसके अतिरिक्त प्रस्तुतीकरण में आन्तरिक सम्बद्धता है। तथ्यों में प्रासंगिकता है, कुछ अपवादों को छोड़कर जैसे भारत की सांस्कृतिक विरासत के अनतर्गत कला और साहित्य का वर्णन आवश्यकता से बहुत अधिक है। इतना अधिक विस्तार अप्रासंगिक लगता है। अच्छा होता कि इस पक्ष के उल्लेख में सारतत्व चयन किया जाता और केवल विशिष्टताओं का ही उल्लेख होता क्योंकि सामाजिक विज्ञान में विषय वस्तु को अनुशासित कर अनावश्यक विस्तार से मुक्त रहने का प्रयास किया जाता है।

बौद्धिक जिज्ञासा जागृत करना किसी भी पुस्तक का एक विशिष्ट गुण होता है। इसे जागृत करने के लिए लेखक की विषय में गहरी पैठ होनी चाहिए तथा प्रस्तुतीकरण में भी विशिष्टता होनी चाहिए। सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था के मूल में कुछ विचार धाराएँ कार्य करती हैं और उनके पीछे जो दर्शन या सिद्धान्त होते हैं वे प्रत्येक युग की व्यवस्था के विविध आयामों को अपनी प्रकृति के अनुसार मोड़ देते हैं और इतिहास इनसे प्रभावित होकर अपनी राह बनाता है।

इस दृष्टि से समीक्षा करने पर ऐसा लगता है कि इस पुस्तक के लेखकों का उद्देश्य मात्र तथ्यों का वर्णन रहा है और इससे ऊपर उठकर घटनाओं के पीछे जो विचारों की प्रेरणा है अथवा दर्शन की

दृष्टि है, उसकी गहराई पर ध्यान नहीं दिया गया। अतः मात्र इतिवृत्तात्मकता से कम से कम माध्यमिक स्तर के छात्रों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे स्वयं उस गहराई तक पहुँच सकेंगे जो घटनाओं के पीछे विचार के रूप में अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान है। जब तक तथ्यों की प्रस्तुति के साथ-साथ थोड़ा गहरे स्तर पर उतर कर समीक्षा भी प्रस्तुत नहीं की जायेगी तब तक छात्रों की दृष्टि उस स्तर तक न पहुँचेगी जो बौद्धिक जिज्ञासा को जन्म देती है। ऐसा लिखने का यह अभिप्राय नहीं कि आद्योपान्त इस प्रकार की समीक्षा नहीं है---ऐसी समीक्षा है परन्तु बहुत कम जबकि प्रत्येक अध्याय में ऐसी दृष्टि छात्रों के समक्ष संक्षेप में प्रस्तुत की जानी चाहिए थी जिससे उनमें जिज्ञासा जागृत होती। यही बात मनोविनोदात्मक उत्सुक्ता के सम्बन्ध में भी न्यूनाधिक रूप में लागू होती है।

पुस्तक में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ बोझिलता और नीरसता है। सतत शिक्षा एवं पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण में आगत अध्यापकों से इस सम्बन्ध में बातचीत करके उसकी प्रतिक्रिया जानने का प्रयास किया गया है। कुल मिलकर उनकी प्रतिक्रिया यह है कि पुस्तक के लेखन में बोझिलता और दुरूहता है। उनका कहना है कि तथ्यों के बाहुल्य का मोह, भाषा की परिमार्जित शैली के प्रति आकर्षण तथा प्रस्तुतीकरण की सुबोधता की हलकी अपेक्षा के कारण बोझिलता, नीरसता और दुरूहता आ गयी है। इन अध्यापकों का तो यहाँ तक कहना है कि छात्र इस पुस्तक को पढ़ने में रूचि प्रदर्शित नहीं करता तथा चाहते हैं कि उन्हें संक्षेप में सरल शब्दावली में समझाया और लिखाया जाय। सामाजिक विज्ञान के अध्यापकों का यह कथन मेरी दृष्टि में आंशिक रूप से सत्य हो सकता है परन्तु पूर्ण रूप से नहीं।

वस्तुतः कुछ सीमा तक तथ्यों का साधारणीकरण तथा भाषा की सादगी से दूर किया जा सकता है। उदाहरण के लिये प्रथम पाठ को मानव की उत्पत्ति, प्रकृति को अनुकूल बनाने, रहन-सहन में सुधार के प्रयत्न, साहसिक खोजों और आविष्कारों के कहानी के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। शेष अंश वहिर्गत किया जा सकता है। अध्याय दो भी इसी प्रकार संक्षिप्त हो सकता है। सिन्धु घाटी की सभ्यता, मेसोपोटामिया की सभ्यता, मिस्र की सभ्यता और चीन की सभ्यता बहुत विस्तृत है। हम संक्षेप में कतिपय विशिष्टताओं, जिनके कारण उनकी प्रसिद्धि अक्षुण्य है, का ही उल्लेख करें।

कुल मिलाकर लेखकों ने आवश्यकता से अधिक अंश का प्रतिपादन कर पुस्तक के कतिपय अध्यायों को बोझिल, दुरूह और नीरस तो बना ही दिया है, छात्रों के वय एवं मानसिक स्तर को भी ध्यान में नहीं रखा है। लेखन में विषयगत विशिष्टता इतनी उभर आयी है कि लेखक अधिकाधिक लिखने के लोभ का संवरण नहीं कर पाये और इसके फलस्वरूप पाठों का स्वरूप अधिक तथ्यात्मक होकर स्थान-स्थान पर छात्रों के मानसिक धरातल से ऊपर उठ गया है। ऐसी स्थिति में पुस्तक का उबाऊ

प्रतीत होना स्वाभाविक है। उदाहरण के लिये मध्यकालीन संसार का वर्णन इतिहास की पुस्तक के लिये ठीक हो सकता है परन्तु सामाजिक विज्ञान की अवधारणा के तो सर्वथा प्रतिकूल है। इसी प्रकार भारत की सांस्कृतिक विरासत के अन्तर्गत विभिन्न कलाओं एवं साहित्यिक रचनाओं का वर्णन इतना विस्तृत है कि हाई स्कूल की इतिहास की पुस्तकों की सामग्री से किसी भी दशा में कम नहीं प्रतीत होता।

दुरूहता को दूर करने के लिये तृतीय अध्याय से राजनीतिक कारण हटाये जा सकते हैं। चौथे अध्याय में सभी धर्मो की मूलभूत एकता को ही रेखांकित किया जाय। अध्याय छः की भी सामग्री अत्यन्त विस्तृत है। इससे विश्व की प्राचीन सभ्यताओं से अमिलन को हटाया जा सकता है। अध्याय 7 के अन्तर्गत योरप में हुई औद्योगिक क्रान्ति ही पर्याप्त है। भारत के प्रमुख उद्योग धन्धों आदि से सम्बन्धित विषयवस्तु का उल्लेख द्वितीय भाग में होने के कारण यहाँ अप्रासंगिक है। अध्याय 8 में क्रान्तियों के कारण एवं उनके दूरगामी प्रभाव का वर्णन यथेष्ट है। अध्याय 9 में भारत की सांस्कृतिक विरासत का वर्णन संक्षेप में अपेक्षित है तथा प्राचीन और मध्यकालीन कला एवम् साहित्य का इतना विस्तृत वर्णन अनावश्यक और उबाऊ है। अध्याय 10 में विभिन्न सुधारकों की सामाजिक सेवाओं एवं समाज के पुनरूद्धार हेतु उनके प्रयासों तथा प्रभाव तक सीमित रहना समीचीन होगा। स्वतंत्रता के आन्दोलन के अध्याय को नये दृष्टिकोण से लिखना है जिसकी चर्चा पहिले ही की जा चुकी है। अध्याय 12 में विश्व की प्रमुख शासन प्रणालियों पर विषयवस्तु का इतना विस्तार व्यर्थ है। इसे बहिर्गत किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय एकता के अध्याय में देश की अनेकता, विघटनकारी तत्व और राष्ट्रीय एकता हेतु उपाय पर्याप्त होंगे तथा अन्तिम अध्याय के अन्तर्गत गुट निरपेक्षता, मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध, पंचशील, शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व, भारत और संयुक्त राष्ट्र संघ, निःशस्त्रीकरण, उपनिवेशवाद, जाति भेद, रंग भेद को संक्षिप्त कर इसे पुनः रोचक ढ़ंग से लिखने की आवश्यकता है। उद्देश्य यह है कि इन समसामयिक दृष्टिकोणों की समझ का छात्रों में विकास हो जाय ताकि समाचार पत्रों को पढ़कर वे विश्व की गतिविधियों में रूचि लें तथा अन्याय और शोषण के प्रति उनके हृदय में असन्तोषजागृत हो। इस प्रकार ऊपर दिये गये सुझावों के आधार पर विषयवस्तु का परिमार्जन कर पुस्तक की दुरूहता और बोझिलता का परिष्कार किया जा सकता है।

विषयवस्तु के प्रस्तुतीकरण में शिक्षण विज्ञान के आधुनिक उपागमों के प्रयोग का प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है। विषयवस्तु की प्रस्तुति इस प्रकार की जानी चाहिए कि छात्र तर्क द्वारा निष्कर्ष स्वयं निकाले तथा कार्य से कारण की खोज करें एवं कारण से मार्ग पर पहुँच कर स्वयं निष्कर्ष तक पहुँचे। यह प्रक्रिया पुस्तक लेखन में बहुत कम अपनाई गयी है। जहाँ अपनाई भी गयी है वहाँ त्रुटिपूर्ण है। प्रत्येक अध्याय इस दृष्टि से पुनः लिखने की आवश्यकता है। यदि निष्कर्ष स्वयं ही छात्रों को मिल

गये तो वे तार्किक होकर घटनाओं का विश्लेषण करते हुए कारणों की खोज न करेंगे और कार्य कारण के मध्य एक सहज सम्बन्ध की गहराई तक न जा सकेंगे। अतः इसे पुस्तक लेखन का महत्त्वपूर्ण पहलू मानकर प्रत्येक अध्याय की विषयवस्तु इस प्रकार प्रस्तुत की जाय कि छात्रों में तार्किक शक्ति का उद्रेक हो और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की समझ विकसित हो।

पुस्तक में दृश्य उपादानों का चयन किया गया है। पत्थर के औजार, हड़प्पा लिपि, मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में प्राप्त मुहरों के चित्र, मेसोपोटामिया की कलाकार लिपि, गीजा का महान पिरामिड, अशोक की लाट, अंगकोर वाट का वैष्णव मंदिर, महापुरूषों के चित्र, भुवनेश्वर का शिव मंदिर, कुतुबमीनार, ताजमहल, जार्ज स्टीफेंसन का रेल इंजन, भारत की सांस्कृतिक विरासत के अनेकानेक चित्र, युद्धस्थल में लक्ष्मीबाई, प्रथम प्रधानमंत्री के रूप में शपथ ग्रहण करते हुए पं० नेहरू, सुभाष और नेहरू, विधान सभा भवन, संसद भवन, नई दिल्ली, राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय चिन्ह, मिग-22 लड़ाकू विमान, जगुआर, गुट निरपेक्ष राष्ट्रों के सम्मेलन में पं० नेहरू, नासिर और मार्शल टीटो, बाडुंग सम्मेलन में पं० नेहरू अन्य राष्ट्राध्यक्षों के साथ तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में भाषण करते हुए पं० नेहरू आदि दृश्य उपादानों से पुस्तक आकर्षक बन गयी है। परन्तु मानचित्रों की संख्या पुस्तक में अति न्यून है। प्रत्येक अध्याय में आवश्यकतानुसार उपयुक्त मानचित्रों का चयन कर पुस्तक में जोड़ने से इसकी उपयोगिता में वृद्धि होगी।

पुस्तक में संवेदात्मक सामग्री की उपयुक्तता तथा पर्याप्तता पर विचार करना भी अपरिहार्य है। व्यक्तिगत स्तर पर कुछ अध्यायों का चयन संवेदनात्मक है। उदाहरण के लिये प्राचीन संसार की कुछ महत्त्वपूर्ण सभ्यताएँ, विश्व के प्रमुख धर्म एवम् ध्येय की समानता, भारत की सांस्कृतिक विरासत एवं देश के गौरव का आख्यान, भारत में नव जागरण और चेतना का आविर्भाव, स्वतंत्रता की प्राप्ति को मूल्य मानकर देशव्यापी आन्दोलन एवं जन समर्थन, राष्ट्रीय एकीकरण, स्वतंत्रता प्राप्ति को देश के नव निर्माण का साधन मानकर बहुआयामी विकास, प्रजातंत्र में जनजीवन, राष्ट्रीय सुरक्षा, देशानुराग, संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना और विश्व शांति के लिए सत्प्रयास आदि से सम्बन्धित विषयवस्तु का चयन संवेदनात्मक रूप से अत्यन्त उपयोगी है। इससे छात्रों में जहाँ अपने अतीत के प्रति पूज्यभाव का प्रादुर्भाव होता है वहीं भारत के नव-निर्माण के प्रति चेतना भी उत्पन्न होती है। राष्ट्रीय एकता के मार्ग में विघटनवादी तत्त्वों के प्रति वितृष्णा उत्पन्न होती है और राष्ट्रीयएकता एवं सांस्कृतिक एकता को अक्षुण्ण रखने की प्रेरणा प्राप्त होती है। प्रजातंत्र एक मूल्य है और उस जीवन पद्धति को व्यावहारिक जीवन में सही परिप्रेक्ष्य में देखने और करने की संवेदनात्मक

अनुभूति जागृत होती है। जहाँ एक ओर देश की सुरक्षा के लिये कटिबद्ध होने का संकल्प उत्पन्न होता है वहीं संहारक आयुधों के निर्माण से तनाव, शंका, अविश्वास और भय के वातावरण को दूर कर अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के विकास का पथ प्रशस्त होता है।

पाठ्य सहगामी क्रियाकलापों के क्षेत्र में भारतीय जीवन से निखर कर उद्भूत उसकी सांस्कृतिक विरासत के प्रदर्शन से, बहु-आयामी क्षेत्र की पहचान बनाती है। प्रजातंत्र में जन जीवन को विद्यालय स्तर से लेकर जीवन के विविध क्षेत्रों में क्रियान्वित करने की दिशा मिलती है। स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु किये गये बलिदानों की यादकर वाद विवाद प्रतियोगिता, अभिनय एवं संवेदनात्मक लेख लिखने की प्रेरणा मिलती है। विद्यालय आज समाज का लघु संस्करण बन गया है। अतः विद्यालय स्तर पर इस प्रकार की संवेदना से अनुस्यूत ऐतिहासिक सामग्री का विभिन्न आयोजनों में प्रयोग किया जा सकता है। विविध ऐतिहासिक स्थलों की सामूहिक यात्रा इस दिशा में छात्रों के हृदय पटल पर एक अभिनव संस्कार को जन्म देगी। अतः इस दृष्टि से पुस्तक में प्रस्तुत संवेदनात्मक सामग्री व्यक्तिगत स्तर, कक्षा स्तर, विद्यालयीय स्तर एवं पाठ्यक्रमेत्तर स्तर पर उपयुक्त है। जहाँ तक पर्याप्तता की बात है पुस्तक में प्रस्तुत सामग्री को ही सीमा मान लेना उपयुक्त न होगा।

पारिभाषिक शब्दों की एक सूची बनाकर और फिर उन्हें सुबोध ढंग से व्याख्यायित करने की अपरिहार्य आवश्यकता है। उदाहरण के लिये प्रागैतिहासिक, आद्यैतिहासिक और ऐतिहासिक को स्पष्ट करने की आवश्यकता है। इसी प्रकार पुरातत्त्व क्या है, पुरातत्त्वविद किसे कहते हैं, उत्खनन की प्रक्रिया का क्या आशय है इसे समझाया जाय। अडंज, स्तनपायी जीव, चित्रलिपि, पिरामिड, कीलाकारलिपि, जीवाश्म, शाल्कल औजार हम्माम चाक, सौर पंचांग, पैगोडा, कुतुबनुमा आदि की व्याख्या अपेक्षित है। पंचजन ययु अनु, द्रुह्य, तुर्वसु, विश, सूत, उपरिक, वेदान्त मीमांसा, सांख्य योग तथा वैशेषिक, सेनट, ज्यूपिटर, शाक्त, वेदांग, कैवल्य, अस्तेय, अपरिग्रह, महाभिनिष्क्रमण, महापरिनिर्वाण, कैथोलिक, प्रोटेस्टैण्ट, रिनेसाँ, उपनिवेश, उपनिवेशिक स्पर्द्धा, औद्योगिक क्रान्ति, सर्वभाव धर्म, सामान्तवाद, निःशस्त्रीकरण आदि को क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत कर इनकी व्याख्या करने पर ही नवीन शब्दावली को छात्र हृदयंगम करने में सफल होंगे। प्राचीन काल, मध्यकालीन, आधुनिक और समकालीन घटनाओं और उनके पीछे की विचारधाराओं को समझने की दृष्टि से इस प्रकार की पारिभाषिक शब्दावली से छात्र सही परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक अनुभूति कर सकेंगे।

प्रत्येक अध्याय के अन्त में मूल्यांकन हेतु दिये गये प्रश्न अभ्यासों पर दृष्टिपात करने पर विदित होता है कि "क" "ख" एवं "ग" शीर्षकों के अन्तर्गत तीन प्रकार के प्रश्न पर्याप्त संख्या में अंकित है

जो अतिलघु उत्तरीय, लघु उत्तरीय एवं दीर्घ उत्तरीय में वर्गीकृत किये जा सकते हैं। इनके माध्यम से पाठ्य की तथ्यात्मक जानकारी तो की जा सकती है। परन्तु ऐसे प्रश्नों का आभाव है जिनके उत्तर छात्रों को देने में बुद्धि का प्रयोग करना पड़े। दूसरे शब्दों में प्रश्नों की प्रकृति ज्ञानात्मक एवं बोधात्मक अधिक है तार्किक एवं बौद्धिक प्रश्न कहीं कहीं अत्यन्त अल्प रूप में मिलते हैं। कौशलात्मक एवं अनुप्रयोगात्मक प्रश्नों का अभाव भी खटकता है।

इस समय सपुस्तक परीक्षा प्रणाली का हमारे प्रदेश में परीक्षण चल रहा है। सपुस्तक परीक्षा प्रणाली की सफलता का रहस्य प्रश्नों के स्तर पर निर्भर है। यदि ऐसे ही प्रश्न पूछे गये जिनके उत्तर छात्रों को पुस्तक में सीधे प्राप्त होते हैं तो उससे अभीष्ट की पूर्ति न होगी। कहने का आशय यह है अभ्यासार्थी ऐसे प्रश्नों का समावेश होना चाहिए जो मात्र तथ्यात्मक न होकर अनुप्रयोगात्मक भी हों। ऐसे प्रश्नों की संख्या अधिक होनी चाहिए जिनके उत्तर छात्रों को सीधे पुस्तक में न प्राप्त हों। इसी प्रकार कुछ प्रश्न मानचित्र से भी सम्बन्धित हों जिनसे ऐतिहासिक घटनाओं से जुड़े स्थलों की सही स्थिति समझने एवं अभ्यास करने की दिशा में छात्र प्रेरित हों। अतः प्रत्येक अध्याय के अन्त में दिये गये प्रश्नों में संशोधन की आवश्यकता है।

प्रश्न तो पर्याप्त हैं पर सभी प्रकार के प्रश्न नहीं है। तथ्यात्मक प्रश्नों की संख्या न्यून की जाय इनके स्थान पर बौद्धिक एवं अभिप्रेरणा युक्त प्रश्नों की संख्या बढ़ाई जाय। पुनर्बलन के प्रश्न भी अपर्याप्त हैं। इनके चयन में सावधानी अपेक्षित है।

पुस्तक की भाषा पर बहुत आक्षेप किया जाता है। लेखकों ने अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन किया है जिसके कारण भाषा कठिन हो गई है। सुबोध न होने से छात्र पुस्तक पढ़ना पसन्द नहीं करते, ऐसा सतत शिक्षा के अन्तर्गत आने वाले शिक्षकों की अनुभूति है। सचमुच क्लिष्ट भाषा के प्रयोग से तथ्यों को समझाने के लिये छात्रों को बौद्धिक व्यायाम कर भाषा के दुर्भेद्य दुर्ग को तोड़ना पड़ता है। पर वे तोड़ न पाकर हार मान बैठते हैं और शब्दों के परावार के अन्तस्थल में प्रविष्ट न हो सकने के कारण पक्ष आशय के मोती उनकी पकड़ में नहीं आ पाते। इसके कारण भाषा में स्वाभाविक प्रभाव कुंठित हो गया। भाषा निर्जीव और दुरूह है। ऐसे स्थल यदि कम हों तो उन्हें इंगित भी किया जा सकता है। सारांश यह है कि पुस्तक का सबसे दुर्बल बिन्दु उसकी भाषा है। भाषा की दृष्टि से तो पूरी पुस्तक पुनर्लेखन की मांग करती है। लेखन पाण्डित्य प्रदर्शन की अपेक्षा सरल, सुबोध, प्रवाहपूर्ण और सजीव भाषा में विषय वस्तु प्रस्तुत करें तो छात्र कठिन शब्दों की चकाचौंध से बचकर पुस्तक से कुछ ग्रहण कर सकेगा।

पुस्तक के कुछ अध्याय बहुत ही सुन्दर हैं जैसे प्रागैतिहासिक मानव का जीवन, विश्व के प्रमुख धर्म, यूरोप में पुनर्जागरण, भारतीय सांस्कृतिक विरासत, प्रजातंत्र में जन-जीवन, राष्ट्रीय एकता आदि। पर एक दोष यह है कि पुस्तक के लेखन में विविधता होने के कारण पुस्तक में कई बेमेल रंग दिखते हैं। चूँकि लेखक अलग-अलग हैं, उनकी शैली अलग-अलग है, अतः पुस्तक में लेखन की एक रूपता नहीं है। कुछ अध्याय इतने ऊँचे स्तर से लिखे गये हैं कि लेखक भूल जाता है कि वे हाई स्कूल के छात्र के लिये अनुपयुक्त है। अतः प्रभावकारिता की दृष्टि से पुस्तक न तो प्रभावी कही जायगी और न अप्रभावी अपितु इसे कम प्रभावी कहा जा सकता है। स्थान-स्थान पर इंगित दोषों को दूर करके निस्संदेह पुस्तक को प्रभावी बनाया जा सकता है।

पुस्तक की प्रभावकारिता की दृष्टि से समीक्षा करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इसे दो पहलुओं से देखा जाय, पाठ्य क्रम और पाठ्य वस्तु। पाठ्य क्रम के अन्तर्गत सन्निविष्ट अध्याय अत्यन्त महत्वपूर्ण है और उनका चयन ठीक ढंग से किया गया है। पुस्तक में प्रागैतिहासिक मानव जीवन, नदी घाटी की सभ्यताएं, प्राचीन संसार की महत्वपूर्ण सभ्यताएँ, विश्व के प्रमुख धर्म, मध्यकालीन संसार, यूरप में पुनर्जागरण, औद्योगिक क्रान्ति, राजनैतिक क्रान्तियाँ, भारत की सांस्कृतिक विरासत, भारत में नवजागरण, स्वतंत्रता के लिये संघर्ष, प्रजातंत्र में जन-जीवन, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय सुरक्षा तथा विदेश नीति आदि अध्याय हैं। इस प्रकार पाठ्यक्रम में मुख्य-मुख्य बातें जिनका समावेश होना चाहिये। वे सम्मिलित हैं। यदा कदा परिवर्तन कर कुछ जोड़कर इसे और प्रभावी बनाया जा सकता है। कुल मिलाकर पाठ्यक्रम के अन्तर्गत अध्यायों की दृष्टि से पुस्तक उपयुक्त है।

पाठ्यक्रम की दृष्टि से पुस्तक जितनी प्रभावी है उतनी पाठ्य वस्तु की दृष्टि से नहीं। प्रत्येक अध्याय में प्रस्तुत सामग्री छात्रों के स्तर की दृष्टि से बहुत अधिक है। इसे न्यून करने की आवश्यकता है। तथ्यों की बोझिलता पुस्तक की प्रभावकारिता को न्यून कर देती है। दूसरी बात जिससे पुस्तक की प्रभावकारिता कम होती है वह है इसकी भाषा। भाषा क्लिष्ट है, वाक्य लम्बे हैं, प्रवाह प्रांजल नहीं है। इससे पुस्तक अरोचक हो गई है। लिखने का ढंग जैसा रोचक होना चाहिए वैसा नहीं है।

अतः आवश्यकता है कि तथ्यों की बोझिलता समाप्त की जाय, भाषा सरल, सुबोध, प्रांजल और प्रवाह पूर्ण बनाई जाय तथा प्रस्तुतीकरण रोचक बनाया जाय तभी पुस्तक प्रभावी हो सकती है। अतः पाठ्यक्रम के चयनित अध्यायों की दृष्टि से पुस्तक प्रभावी है जबकि विषयवस्तु की दृष्टि से कम प्रभावी है।

पुस्तक में चित्र, रेखाचित्र एवं मानचित्र भी दिये गये हैं। इनकी संख्या कम है। नव-जागरण से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक देशभक्तों के चित्रों को और सम्मिलित किया जाय। कुछ चित्र तो स्पष्ट हैं पर कुछ धूमिल हैं। धूमिल चित्रों के स्थान पर स्पष्ट चित्र स्थापित किये जॉय। समय का बोध देने हेतु समय चार्ट नहीं दिये गये हैं। यह अभाव पुस्तक में खटकता है। चित्र तो पुस्तक में प्रत्येक अध्याय में है परन्तु मानचित्रों की संख्या बहुत ही न्यून है। मानचित्रों की उपादेयता स्वयं सिद्ध है। इससे सही परिप्रेक्ष्य उभरता है। आवश्यकता है मानचित्रों को सम्मिलित करने की। पूरी पुस्तक में एक मानचित्र प्रारम्भ में है और दूसरा बाद में। केवल दो मानचित्र अभीष्ट की पूर्ति न कर सकेंगे। चित्र और रेखाचित्र पुस्तक में स्थान-स्थान पर दिये गये हैं फिर भी उन्हें और बढ़ाने तथा धूमिल को हटाने की आवश्यकता है। मानचित्र काफी बढ़ाये जायॅ और पुस्तक को और उपयोगी बनाया जाय।

यह सामाजिक विज्ञान की पुस्तक है, इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र और अर्थशास्त्र की नहीं। विषयवस्तु को स्थान-स्थान पर संक्षिप्त करने के सम्बन्ध में सुझाव दिये गये हैं। संक्षेपीकरण की प्रक्रिया से पुस्तक का आकार कम होगा।

पुस्तक के मूल पृष्ठ में, अच्छा होगा यदि मानव सभ्यता के क्रमिक विकास पर कोई आकर्षक चित्र हो। छपाई में भी कहीं-कहीं सुधार अपेक्षित है। कम्पोजिंग की दृष्टि से पुस्तक सामान्य तथा सन्तोषजनक है। अक्षरों का आकार लघु है। ऐसे स्थल कम ही हैं परन्तु फिर भी आदि से अन्त तक अक्षरों के आकार में एकरूपता नहीं है। अच्छा होगा कि नये संस्करण में उपर्युक्त दोषों का परिहार कर दिया जाय।

निष्कर्ष यह है कि सामाजिक विज्ञान भाग-। का संक्षिप्तीकरण, सरलीकरण एवं पुनर्नवीनीकरण कुल मिलाकर अपरिहार्य है। उक्त पुस्तक सामाजिक विज्ञान के अनिवार्य विषय के रूप में लागू किये जाने के परिप्रेक्ष्य में कुछ शीघ्रता में लिखी गई प्रतीत होती है। अतः इस प्रथम प्रयास में त्रुटियों का होना स्वाभाविक ही है। यह बहुत दिनों से कहा जा रहा था कि सामाजिक विज्ञान की पुस्तक की समीक्षा के लिये एक कार्यशाला आयोजित की जाय जिसमें लेखक मंण्डल, परामर्शदाता, हाई स्कूल स्तर पर सामाजिक विज्ञान पढ़ाने वाले अध्यापक, विशिष्ट संस्थानों के विषय विशेषज्ञ आदि के अतिरिक्त डिग्री कालेज एवं विश्वविद्यालय के अध्यापकों को आमंत्रित कर, प्रत्येक अध्याय के गुण दोषों का विवेचन किया जाय तथा कुछ जोड़ते हुए और कुछ छोड़ते हुए नवीन वैचारिक भूमि तैयार कर, पुस्तक में संशोधन एवं परिमार्जन किया जाय और यदि आवश्यकता हो तो कुछ अध्यायों का पुनर्लेखन भी किया जाय।

यह हर्ष का विषय है कि मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग (राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान) इलाहाबाद ने इस परिप्रेक्ष्य में अपने यहॉ "नयी शिक्षा नीति" के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक

विज्ञान के पाठ्यक्रम के निर्माण हेतु दिनांक 20.1.87 से 24.1.87 तक एक पंचदिवसीय आयोजित थी, जिसमें राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान के विषय विशेषज्ञों के अतिरिक्त इण्टरमीडिएट कालेज के प्रवक्ता एवं प्रधानाचार्य तथा विश्वविद्यालय स्तर के प्रतिष्ठित प्राध्यापकों को सहभागिता हेतु आमंत्रित किया गया था। कुल मिलाकर इस कार्यशाला में 34 प्रतिभागी सम्मिलित हुए और पांच दिन तक दोनों सत्रों में प्रतिभागियों ने सक्रियता पूर्वक भाग लिया।

यद्यपि यह कार्यशाला नयी शिक्षा नीति के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक विज्ञान के पाठ्य निर्माण के उद्देश्य से आयोजित की गई थी किन्तु कार्यशाला के सातत्य में इसका आयाम विस्तृत हो गया और और यह आवश्यक समझा गया कि सामाजिक विज्ञान का नवीन पाठ्यक्रम बनाने के पूर्व यह आवश्यक है कि जो प्रचलित पाठ्यक्रम है तथा उसके आधार पर विभिन्न अध्यायों में जो विषयवस्तु प्रस्तुत की गई है उन सब पर विचार करने के बाद यदि आवश्यक हो तो नवीन पाठ्यक्रम बनाया जाय अन्यथा क्यों न प्रचलित पाठ्यक्रम तथा उसके आधार पर विभिन्न अध्यायों में प्रस्तुत विषय सामग्री का ही संक्षिप्तीकरण, सरलीकरण एवं पुनर्नवीनीकरण कर लिया जाय।

इस कार्यशाला में मानविकी आदि सामाजिक विज्ञान(राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान) तथा श्री राम सूरत लाल, सेवानिवृत्त वरिष्ठ शोध अधिकारी द्वारा सामाजिक विज्ञान के दो नये पाठ्यक्रम विचारार्थ प्रस्तुत किये गये तथा प्रचलित पाठ्यक्रम एवं उसके आधार पर प्रणीत सामाजिक विज्ञान की पुस्तक की अन्तर्वस्तु की भी समीक्षा की गई। कार्य को व्यवस्थित रूप से सम्पन्न करने के लिए तीन समितियाँ गठित की गईं।

दो समितियों ने जहाँ नवीन पाठ्यक्रमों पर विचार किया वहीं तीसरी समिति ने प्रचलित पाठ्यक्रम और उसकी संरचित पुस्तक की समीक्षा की। कार्यशाला के अन्तिम दिन तीनों समितियों ने एक साथ बैठकर विचार विमर्श किया। इस विचार विमर्श में परस्पर विचारों का आदर करते हुए अपने अपने दृष्टिकोण प्रस्तुत किये गये जिससे विचार मतभेद के अनेक आयाम प्रस्फुटित हुए। प्रतिभागियों ने विविध विचारों को स्वस्थ विकास का प्रतीक माना।

अन्त में निष्कर्ष यह रहा कि यह विषय बहुत संवेदनशील है। अतः विचारों में परस्पर टकराहट स्वाभाविक ही है। सौहार्दपूर्ण वातावरण में ताल-मेल स्थापित करते हुए जहाँ सामाजिक विज्ञान की नवीन वैचारिक भूमि निर्मित करने की आवश्यकता है, वहीं प्रचलित पाठ्यक्रम और वर्तमान पुस्तक को एकदम नकारना बहुत बड़ी भूल होगी। अतः उचित यही होगा कि प्रचलित पाठ्यक्रम और वर्तमान पुस्तक की समीक्षा से कार्य प्रारम्भ किया जाय। उसका संक्षिप्तीकरण, सरलीकरण किया जाय

और फिर आवश्यकतानुसार कुछ छोड़ते हुए कुछ जोड़ते हुए शनैःशनैः सामाजिक विज्ञान की नवीन अवधारणा एवम् राष्ट्रीय शिक्षा नीति के परिप्रेक्ष्य में चिन्तन करते हुए नयी वैचारिक भूमि तैयार की जाय। पर यह सब कुछ जो पास में धरोहर के रूप में संचित है उसे उपेक्षित करके नहीं, सर्वथा नकार कर नहीं।

Sub. National Systems Unit,
National Institute of Educational
Planning and Aministration
17-B,SriAurbindo Marg,NewDelhi-110016
DOC. No....4863.....
Date....12|9|89.....

NIEPA DC
D04863